राजस्थान उच्च न्यायालय जयपुर पीठ, जयपुर

आदेश

एकलपीठ दाण्डिक विविध याचिका संख्या**-1090/2005**

दीनदयाल शर्मा बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य

दिनांक-29.04.2011

माननीय न्यायाधिपति श्री एस एस कोठारी

श्री अजय गुप्ता, अधिवक्ता- प्रार्थी की ओर से
श्री अखिल सिमलोट, अधिवक्ता-विपक्षी की ओर से
श्री लक्ष्मण मीणा, विद्वान् लोक अभियोजक वास्ते राज्य

--

REPORTABLE

1. प्रार्थी अभियुक्त दीनदयाल शर्मा की ओर से धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत यह याचिका अपर मुन्सिफ एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट नं.1 सीकर के आदेश दिनांक 19.06.92 तथा इसके विरूद्ध प्रस्तुत निगरानी में इसे पुष्ट करने के अपीलीय न्यायालय- अपर सैशन न्यायाधीश क्रम-1, सीकर के आदेश दिनांक 27.07.2005 से व्यथित होकर प्रस्तुत की गयी है।

2. प्रकरण की पृष्ठभूमि एवं संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि परिवादी श्यामलाल द्वारा एक पर्चा बयान दिनांक 15.03.86 को थाना कोतवाली सीकर के सहायक पुलिस उप निरीक्षक को अपने, अपनी पत्नी तथा भाई के साथ मारपीट किये जाने के सम्बन्ध में अभियुक्तगण दीनदयाल, कलावती, आशुतोष, बोदूराम,ओमप्रकाश, मोहनलाल आदि व्यक्तियों के विरूद्ध दिया गया। इस पर अनुसंधान केउपरान्तपुलिस ने अन्तिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसे अस्वीकृत करते हुए विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा उक्त नामांकित छहों अभियुक्तगण के विरूद्ध धारा 147,323 भारतीय दण्ड संहिता के अपराधों में प्रसंज्ञान लिया गया। इस प्रंसज्ञान आदेश केविरूद्ध प्रार्थी दीनदयाल द्वारा धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत इस न्यायालय में दाण्डिक विविध याचिका संख्या 1204/2003 प्रस्तुत की गई जिसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 27.02.2004 को यह निर्देश देते हुए निस्तारित किया गया कि आक्षेपित

आदेश के विरूद्ध दाण्डिक पुनरीक्षण याचिका पोषणीय है, अत: उप निबंधक (न्यायिक) को निर्देश दिया जाता है कि वे इस याचिका को सैशन न्यायाधीश, सीकर को प्रेषित करें जो इसे दाण्डिक पुनरीक्षण याचिका के रूप में दर्ज करने के उपरान्त इस पर विधि अनुरूप आदेश पारित करेंगे। इस आदेश के साथ प्रार्थी को दिनांक 18.03.2004 को उक्त न्यायालय में उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। सैशन न्यायाधीश, सीकर द्वारा इस याचिका को दाण्डिक निगरानी याचिका के रूप में दर्ज कर निस्तारण हेतु अपर सैशन न्यायाधीश क्रम-1, सीकर को अन्तरित कर दिया गया। इस न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुनकर यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि प्रसंज्ञान लेने के आक्षेपित आदेश दिनांक 19.06.92 की जानकारी अभियुक्त को उस पर दिनांक 06.02.2001 को हुए सम्मन की तामील से हो गई थी किन्तु उसने मिथ्या रूप से इसकी जानकारी दिनांक 26.09.2003 को होना बताते हुए 980 दिन के विलम्ब से यह निगरानी पेश की है । इस विलम्ब को पर्याप्त आधार व कारण बताते हुए स्पष्ट नहीं किया गया है। इसे क्षमा करने हेतु न तो कोई आवेदन पेश किया है और न ही बहस के दौरान इस विलम्ब को क्षमा करने की कोई प्रार्थना की गयी है । परिसीमा अधिनियम के अन्तर्गत निगरानी पेश करने की अवधि 90 दिवस है और इस प्रकार समयावधि में प्रस्तुत नहीं होने के कारण केवल मयाद के बिन्दु पर ही यह निगरानी अस्वीकृत किये जाने योग्य है।

3. विद्वान् अधिवक्ता प्रार्थी अभियुक्त का कथन है कि आरोपित घटना दिनांक 15.03.86 की है और प्रार्थी के विरूद्ध धारा 147,323 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराध का प्रसंज्ञान दिनांक 19.06.92 को अर्थात लगभग सवा छ: वर्ष बाद लिया गया है जो स्पष्टत: धारा 468 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार परिसीमा से बाहर है। आरोपित अपराध धारा 323 भारतीय दण्ड संहिता अधिकतम कारावास एक वर्ष के कारावास से और धारा 147 भारतीय दण्ड संहिता का अपराध अधिकतम दो वर्ष के कारावास से दण्डनीय है। इस प्रकार इस मामले में प्रसंज्ञान लेने की अवधि

धारा 468(2)(c) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार तीन वर्ष की है। यह तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद उक्त प्रावधान के अनुसार प्रार्थी अभियुक्त के विरूद्ध संज्ञान लिया जाना सम्भव ही नहीं था। न्यायालय ने धारा 473 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत इस परिसीमा अवधि को बढ़ाने के सम्बन्ध में कोई आदेश पारित नहीं किया है। ऐसी स्थिति में विद्वान् विचारण न्यायालय का आदेश दिनांक 19.06.92 स्वत: रद्ध कर अपास्त किये जाने योग्य है। उनका दूसरा तर्क यह भी है कि अधीनस्थ न्यायालय में पुलिस द्वारा अन्तिम प्रतिवेदन दिनांक 04.12.86 को प्रस्तुत किया गया और न्यायालय ने परिवादी के नोटिस की तामील के बावजूद उपस्थित नहीं होने के कारण दिनांक 04.06.87 को पुलिस द्वारा प्रस्तुत अन्तिम प्रतिवेदन को स्वीकार करने का आदेश पारित कर दिया किन्तु पुन: मुस्तगिस के हाजिर होने व उसके यह कहने पर कि उसे आज तक नोटिस नहीं मिला है, उसके आवेदन पर उसकी विरोध याचिका को रेस्टोर करने का आदेश विधिविरूद्ध रूप से पारित कर दिया। अधीनस्थ न्यायालय को विचारपूर्वक अन्तिम प्रतिवेदन स्वीकार कर लेने के अपने आदेश के पुनर्विलोकन हेतु प्रस्तुत प्रार्थना पत्र को स्वीकार करने का अधिकार नहीं था। उनका यह भी तर्क है कि वास्तव में परिवादी की ओर से इस मामले में विरोध याचिका ही प्रस्तुत नहीं की गयी है । न्यायालय की आदेशिकाओं से भी ऐसा कतई आभास नहीं होता है कि परिवादी की ओर से कोई आपराधिक याचिका भी प्रस्तुत की गयी। परिवादी स्वयं एक अभिभाषक है और उसके प्रभाव में आते हुए न्यायालय ने गलत रूप से विरोध याचिका को रेस्टोर करने का आदेश पारित किया है। इसके उपरान्त अन्तिम प्रतिवेदन पर बहस हेतु बार बार परिवादी को अवसर दिये जाते रहे और बिना किसी यथोचित कारण के स्थगन पर स्थगन दिये गये। इसके बावजूद भी परिवादी की ओर से कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं की गयी, फिर भी न्यायालय ने वर्षों बाद दिनांक 17.06.92 को परिवादी की बहस सुनकर दिनांक 19.06.92 को इसके एवं पांच अन्य अभियुक्तगण के विरूद्ध संज्ञान लेने का आदेश पारित कर दिया। यह आदेश पारित करते समय उन कारणों को ध्यान में नहीं रखा और न ही उन्हें अपने आदेश में ही

विवेचित किया जिन्हें आधार बनाकर पुलिस द्वारा अन्तिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया था। जिस विवादग्रस्त भूखण्ड को लेकर झगड़ा होना बताया जाता है वह रजिस्ट्री के आधार पर पूर्णत: अभियुक्त ओमप्रकाश शर्मा का है । इस पर निर्माण करने के लिए परिवादी श्यामलाल द्वारा न्यायालय से स्थगन चाहा गया जिस प्रार्थना को न्यायालय ने परिवादी का कब्जा न होने आदि आधारों पर अस्वीकृत किया। इस भूखण्ड पर ओमप्रकाश को निर्माण करने का पूरा अधिकार था किन्तु परिवादी श्यामलाल ने उसके प्लॉट पर जाकर इस प्लॉट को अपना बताते हुए उसके निर्माण कार्य में बाधा पहुंचायी और ओमप्रकाश , दीनदयाल आदि के साथ अवैध रूप से मारपीट की जिसके बचाव में ही अभियुक्तगण द्वारा परिवादी के साथ मारपीट की गयी। इस प्रकार आक्रामक श्यामलाल था। अभियुक्तगण ने तो व्यक्तिगत प्रतिरक्षा में ही बल का प्रयोग किया है जिसका उन्हें अधिकार था। अधीनस्थ न्यायालय ने अन्तिम प्रतिवेदन को अस्वीकृत कर अभियुक्तगण के विरूद्ध संज्ञान लेते समय अनुसंधान के दौरान समक्ष आये इन कारणों पर विचार नहीं किया और न ही इन कारणों को स्वीकार न करने का अपने आदेश में ही कोई उल्लेख किया है। इसके उपरान्त परिवादी एवं सहायक लोक अभियोजक को गवाहों की सूची पेश करने के लिए वर्षों तक समय दिया जाता रहा जो सूची गवाहान लगभग 10 वर्ष की अवधि के बाद दिनांक 22.03.2001 को पेश की गयी। दोनों पक्षों के बीच सिविल विवाद होना एवं रंजिश होना पूर्णत: स्पष्ट है, फिर भी न्यायालय ने परिवादी की ओर से एकपक्षीय रूप से बताये तथ्यों का इस परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण नहीं किया। एक ओर तो इसके द्वारा प्रस्तुत निगरानी को इस पर त्रुटिपूर्ण रूप से दिनांक 06.02.2001 को सम्मन की तामील मानते हुए अस्वीकृत कर दिया, दूसरी ओर इसके एवं अन्य अभियुक्तगण के विरूद्ध आरोपित अपराध का प्रसंज्ञान लेने की अवधि समाप्त होने के लगभग सवा तीन साल बाद प्रसंज्ञान लिये जाने के अधीनस्थ न्यायालय के आदेश की वैधता के बारे में कोई भी विवेचन नहीं किया और विधिक स्थिति पूर्णत: स्पष्ट होने के बावजूद भी इस संज्ञान आदेश को धारा 468 दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों को दृष्टिगत रखते हुए अपास्त नहीं

किया। दोनों पक्षों के बीच सिविल वाद लम्बित है। एक वाद अपर जिला न्यायाधीश क्रम-2 के द्वारा दिनांक 15.11.99 को निर्णीत किया गया जिसमें परिवादी द्वारा जाली एवं असत्य कूटरचित दस्तावेज तैयार करना एवं न्यायालय में पेश करना पाया गया।इस प्रकरण में प्रारम्भ से अन्त तक की कार्यवाही में परिवादी के अभिभाषक होने के कारण उसके प्रभाव में आकर न्यायिक प्रक्रिया का दुरूपयोग किया गया है। फलस्वरूप विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय के आदेश को अपास्त कर इसके विरूद्ध लगभग 25 वर्ष से विचाराधीन आपराधिक कार्यवाही को रद्ध किया जावे।अपने पक्ष समर्थन में विद्वान अधिवक्ता प्रार्थी द्वारा कतिपय विधि दृष्टान्त पेश किये गये।

4. इसके विरोध में प्रत्यर्थी परिवादी के विद्वान् अभिभाषक का मुख्य तर्क केवल यह है कि प्रार्थी अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत निगरानी अस्वीकृत की जा चुकी है तो ऐसे आदेश के विरूद्ध धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत प्रस्तुत यह याचिका पोषणीय नहीं है। यह एक प्रकार से दूसरी निगरानी याचिका है जो धारा 397(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार बाधित है तथा विचारणीय नहीं है। न्यायालय को अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए कोई आदेश पारित न कर इसे क्षेत्राधिकार के अभाव में ही अस्वीकृत कर देना चाहिए। इस बिन्दु पर विनिर्णय राजनकुमार माचांदा बनाम कर्नाटक राज्य 1990 क्रिमिनल लॉ रिपोर्टर (एस.सी.) 602 प्रस्तुत किया गया। इसके अतिरिक्त उन्होंनें दोनों विद्वान् अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों को उचित बताते हुए याचिका अस्वीकृत करने की प्रार्थना की।

5. मैंने दोनों पक्षों के तर्कों पर विचार कर दोनों अधीनस्थ न्यायालय के आक्षेपित आदेशों तथा अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री का अवलोकन कर दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत विधि दृष्टान्तों को भी देखा।

6. हस्तगत मामले में अविवादित रूप से यह स्थिति हमारे समक्ष है कि आरोपित घटना दिनांक 15.03.86 की है और प्रार्थी

व अन्य अभियुक्तगण के विरूद्ध धारा 147 व 323 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत प्रसंज्ञान दिनांक 19.06.92 अर्थात सवा छः वर्ष बाद लिया गया है। पत्रावली का अवलोकन यह दर्शाता है कि इसमें पुलिस ने अन्तिम प्रतिवेदन दिनांक 11.08.86 को तैयार कर इसे न्यायालय में दिनांक 4.12.86 को पेश कर दिया था। इस प्रकार पुलिस द्वारा अनुसंधान में विलम्ब होना समक्ष नहीं है। न्यायालय ने पुलिस द्वारा प्रस्तुत इस अन्तिम प्रतिवेदन पर मुस्तगिस को अन्तिम प्रतिवेदन पेश होने की तारीख दिनांक 04.12.86 को ही दिनांक 9.3.87 के लिए नोटिस जारी किये। इस नियत दिन आदेशिका में यह उल्लेख किया कि मुस्तगिस बावजूद तामील नोटिस गैर हाजिर है और पत्रावली वास्ते गौर व आदेश हेतु दिनांक 04.06.87 को निश्चित की गयी। इस दिन न्यायालय ने अन्तिम प्रतिवेदन को स्वीकार करने का आदेश पारित करते हुए यह उल्लेख किया कि डायरी ए.पी.पी. को लौटायी जाए और एफ. आर. दाखिल दफ्तर हो। किन्तु इसी दिन पुनः आदेशिका में यह लिखा कि इतना लिखने के पश्चात मुस्तगिस हाजिर आया और जाहिर किया उसे आज तक नोटिस नहीं मिला है, उस पर नोटिस की तामील गलत ढंग से करवा दी गई है। मुस्तगिस प्रोटेस्ट पिटीशन रेस्टोर करने की दरख्वास्त पेश की और न्यायालय ने इस प्रोटेस्ट पिटीशन को रेस्टोर करने का आदेश देते हुए पत्रावली बहस एवं आदेश हेतु दिनांक 09.07.87 को निश्चित की । इसके उपरान्त लगभग 50 तारीखें दी गई । कई तारीखों पर मुस्तगिस उपस्थित नहीं था और लगभग 25 से अधिक स्थगन मुस्तगिस की प्रार्थना पर बहस हेतु दिये गये। अधिकांश तारीखों पर जो स्थगन दिये गये, उनका भी कोई औचित्य दृष्टिगत नहीं होता है। अन्ततः दिनांक 17.06.92 को परिवादी की बहस सुनकर दिनांक 19.06.92 को मुस्तगीस के तर्कों, पर्चा बयान एवं पुलिस द्वारा अनुसंधान के दौरान लेखबद्ध किये गये बयानों को आधार बनाते हुए अधीनस्थ न्यायालय ने प्रथमदृष्ट्या यह पाया कि प्रार्थी एवं पांच अभियुक्तगण ने परिवादी आदि के साथ मारपीट की है, फलस्वरूप अपने आदेश दिनांक 19.06.92 से प्रार्थी सहित छः अभियुक्तगण के विरूद्ध धारा 147,323 भारतीय दण्ड संहिता के अपराधों का

प्रसंज्ञान लिया।। स्पष्ट है कि यह प्रसंज्ञान घटना घटित होने की तारीख से लगभग सवा छः वर्ष बाद लिया गया है।

7. प्रार्थी एवं अन्य अभियुक्तगण के विरूद्ध जिन उक्त दो धाराओं के अन्तर्गत अन्वीक्षा हेतु प्रसंज्ञान लिया गया है, उनमें धारा 323 भारतीय दण्ड संहिता के अपराध में अधिकतम एक वर्ष के कारावास एवं धारा 147 भारतीय दण्ड संहिता के अपराध में अधिकतम दो वर्ष की कारावास की सजा हो सकती है। स्पष्टतः इन आरोपित अपराधों में तीन वर्ष से कम की सजा का प्रावधान है। ऐसी स्थिति में धारा 468(2)(c) के अनुसार कोई भी न्यायालय तीन वर्ष की अवधि व्यतीत होने के उपरान्त ऐसे अपराध का प्रसंज्ञान नहीं ले सकती। इस मामले में तथाकथित अपराध की तारीख 15.03.86 होने के कारण अभियुक्तगण के विरूद्ध प्रसंज्ञान दिनांक 15.03.89 तक ही लिया जाना सम्भव था। यह सही है कि धारा 473 दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार दो परिस्थितियों में न्यायालय को परिसीमा अवधि का विस्तारण करने की शक्ति प्राप्त है। प्रथम तो यदि न्यायालय संतुष्ट हो जाए कि प्रकरण के तथ्यों एवं परिस्थितियों में विलम्ब को उचित रूप से स्पष्ट कर दिया गया है और दूसरा यह कि न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है।

8. अविवादित रूप से यह स्थिति हमारे समक्ष है कि अधीनस्थ न्यायालय ने प्रसंज्ञान लेने के आक्षेपित आदेश दिनांक 19.06.92 को पारित करते समय धारा 473 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत परिसीमा अवधि को विस्तारित करने का कोई भी आदेश पारित नहीं किया है। विचारण न्यायालय ने विलम्ब से लिये गये प्रसंज्ञान हेतु अपने आदेश में उचित छोड़ कोई भी कारण अंकित नहीं किया है। धारा 468 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार अभियुक्त के सम्बन्ध में परिसीमा की अवधि अपराध घटित होने की तिथि से ही प्रारम्भ हो जाती है। विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित प्रसंज्ञान आदेश पारित करते समय प्रसंज्ञान लिये जाने की अवधि स्पष्टतः लगभग सवा तीन वर्ष पूर्व ही समाप्त हो चुकी थी किन्तु ऐसे

विलम्ब को क्षमा करने या परिसीमा अवधि को विस्तारित करने हेतु कोई आदेश विचारण न्यायालय द्वारा पारित नहीं किया गया है। अधीनस्थ न्यायालय ने अपने आदेश में ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं किया है कि प्रकरण के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए न्यायहित में परिसीमा की अवधि को विस्तारित करना/बढ़ाया जाना उचित या आवश्यक है। ऐसा भी कोई उल्लेख नहीं है कि अमुक अमुक कारणों से प्रसंज्ञान में विलम्ब हुआ है जिसके सम्बन्ध में न्यायालय संतुष्ट है कि इस विलम्ब को क्षमा कर परिसीमा की अवधि विस्तारित करते हुए संज्ञान लिया जाना चाहिए। सुस्थापित विधि के अनुसार तो यदि विलम्ब से संज्ञान लिया जाता है तो इस सम्बन्ध में अभियुक्त को भी सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है। हस्तगत मामले में विलम्ब से संज्ञान लेने से पूर्व कोई नोटिस प्रार्थी एवं अन्य अभियुक्तगण को दिया जाना समक्ष नहीं है। विचारण न्यायालय की पत्रावली के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पुलिस द्वारा दिनांक 04.12.86 को अन्तिम प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के उपरान्त न्यायालयों द्वारा अधिकांश तारीखों पर स्वीकृत किये गये स्थगन का लेशमात्र भी औचित्य नहीं है। विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट के प्रसंज्ञान लेने के आदेश के अवलोकन से स्वत: ही यह नहीं माना जा सकता है कि उन्होंने विलम्ब को क्षमा करते हुए या विलम्ब अवधि को विस्तारित करते हुए यह प्रसंज्ञान आदेश पारित किया है। धारा 468 दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान को विरचित करने का विधायिका का स्पष्ट प्रयोजन ही यह है कि विलम्बपूर्ण अभियोजन पर अंकुश लगाया जा सके और न्याय का दुरूपयोग नहीं हो। यह उद्धेश्य भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 की भावना के अनुरूप है और अभियोजन चाहे प्राइवेट पक्षकार द्वारा हो या राज्य द्वारा, प्रत्येक के लिए धारा 468 दण्ड प्रक्रिया संहिता की पालना आवश्यक है।

9. मैंने इस सम्बन्ध में प्रार्थी की ओर से प्रस्तुत विधि दृष्टान्तों का भी अवलोकन किया।

10. विनिर्णय वर्द्धमान काला बनाम राजस्थान राज्य 1994

आर सी सी (राज.) 67 में यह उल्लिखित है कि धारा 468 दण्ड प्रक्रिया संहिता, परिसीमा अवधि समाप्त होन के बाद प्रसंज्ञान लिये जाने को बाधित करता है। इस प्रावधान के अनुसार अभियुक्त के सम्बन्ध में परिसीमा अवधि अपराध घटित होने की तारीख से प्रारम्भ होती है। इस मामले में घटना दिनांक 01.10.91 की थी और प्रार्थी के विरूद्ध धारा 279,337 भारतीय दण्ड संहिता के अपराध आरोपित थे। पुलिस ने अन्तिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और न्यायालय ने दिनांक 06.04.93 को उक्त अपराधों का प्रसंज्ञान लिया। आरोपित अपराधों अधिकतम में छः माह के कारावास का प्रावधान है, अतः प्रसंज्ञान आदेश अपास्त किया गया।

11. विनिर्णय श्रीमती सुमित्रा गुप्ता एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य आर सी सी (5) 1980 पेज 343 में घटना दिनांक 9.6.72 की थी। अभियुक्त के विरूद्ध आरोपित अपराध धारा 354,147 एवं 323 भारतीय दण्ड संहिता में प्रसंज्ञान दिनांक 2.8.73 को लिया गया। न्यायालय के अनुसार परिसीमा की अवधि दिनांक 9.6.75 को समाप्त हो चुकी थी। मजिस्ट्रेट ने विलम्ब को क्षमा करने या समय को विस्तारित करने के सम्बन्ध में कोई आदेश पारित नहीं किया था। न्यायालय द्वारा प्रसंज्ञान लेने के आदेश को अपास्त करते हुए निम्न आदेश पारित किया गया:-

> "The petitioners have challenged the said order on the grounds inter alia, that on August 2, 1978, when the learned Magistrate took cognizance of the offences under sections 354, 147 and 323 I.P.C. the period of limitation prescribed for taking such cognizance had already expired. None of the three offences alleged to have been committed by the petitioners is punishable with imprisonment for a period exceeding three years. The limitation for taking cognizance had thus expired on June 9, 1975. It is true that the learned Magistrate could extend the period of limitation if he was satisfied on the facts and circumstances of the case that extension was necessary in the interest of justice. While taking cognizance, the learned Magistrate did not say that he was satisfied on

> the facts and circumstances of the case that the delay had been properly explained to him, or that, it was necessary in the interest of justice to condone the delay. The impugned order must therefore, be quashed."

12. डॉ. दलपत सिंह बनाम राजस्थान राज्य 1979 आर सी सी पेज-467 में आरोपित अपराध दिनांक 10.06.79 को घटित हुआ था। मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 218 एवं 465 भारतीय दण्ड संहिता में प्रसंज्ञान दिनांक 9.9.83 को लिया गया जिसके विरूद्ध प्रस्तुत निगरानी याचिका दिनांक 10.08.87 को अस्वीकृत की गयी। न्यायालय ने अपने समक्ष प्रस्तुत याचिका में उक्त दोनों ही आदेशों को अपास्त करते हुए याचिका स्वीकार की। इस निर्णय के पैरा संख्या-6 में निम्न प्रकार प्रतिपादित किया गया है :-

> "I have carefully gone through this authority but I am not inclined to subscribe to the views expressed by Bombay High Court in Kamal H. Javeri's case (supra). It is true that if the complaint is filed by the complainant in time and the cases are adjourned because the Magistrate is not present o r he embarks upon an enquiry u/ss.200 & 202 Cr.P.C. then that may be a suitable ground for condonation of delay and the Court may exercise its powers under s.473 Cr.P.C. to condone the delay. The bar created by s.468 Cr.PC is against the taking of cognizance. No cognizance will be taken by a Court of competent jurisdiction after the prescribed period of limitation and if has taken it is illegal as per the view of this Court in Panney Singh's case (supra). In the case in hand, although the protest petition was filed b the father of the injured but his counsel sought several adjournments either for production of law book or for obtaining inaction for proceeding against the accused and ultimately the case was argued on 9-9-1983 and the Court has taken cognizance against the accused-petitioner but by that time, the period of three years within which the cognizance could have been taken has expired. The learned Magistrate has given no reasons in his order for condoning the delay. A simple order taking cognizance has been passed by him after the expiry of three

> years. It cannot be held that it condoned the delay ipso facto. Before condoning the delay, the Court has to be satisfied on facts and in the circumstances of the case the delay has been properly explained or the Court has to say taking of cognizance is necessary in the interest of justice but in this case, neither the Court while taking cognizance beyond the period of limitation has observed that it was necessary to do so in the interest of justice nor has it held that delay in taking cognizance has been properly explained and therefore, it is clear case where no powers have been exercised under s.473 C.P.C. but cognizance has been taken straight-way against the provisions of s.468 Cr.P.C.

13. विनिर्णय हेमचंद बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (एकलपीठ दाण्डिक विविध याचिका संख्या 414/1988) जो दिनांक 22 जुलाई 88 को निर्णीत की गयी है, में भी यह प्रतिपादित है कि आरोपित अपराधों को देखते हुए मजिस्ट्रेट अपराध घटित होने की तारीख से एक वर्ष की अवधि समाप्त होने के उपरान्त संज्ञान लेने से पूरी तरह निवारित/प्रतिबंधित है और इस कारण धारा 468(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के अनुसार विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित प्रसंज्ञान आदेश को रद्ध किया।

14. विनिर्णय पंजाब राज्य बनाम स्वर्ण सिंह ए आई आर 1981 (एस.सी.) 1054 में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्न प्रकार प्रतिपादित किया गया है :-

> “The object of Criminal P.C. in putting a bar of limitation on prosecutions was clearly to prevent the parties from filing cases after a long time, as a result of which material evidence may disappear and also to prevent abuse of the process of the Court by filing vexatious and belated prosecutions long after the date of the offence. The object which the statute seeks to subserve is clearly in consonance wit the concept of fairness of trial as enshrined in Article 21 of the Constitution. It is, therefore, of

> the utmost importance that any prosecution, whether by the State or a private complainant must abide by the letter of law or take the risk of the prosecution failing on the ground of limitation."

15. मेरे समक्ष अपराधिक विविध याचिका संख्या 1003/2000 दीनदयाल शर्मा बनाम राजस्थान राज्य आदि में इस न्यायालय की सहपीठ द्वारा पारित निर्णय दिनांक 30 मई 2002 की प्रति भी पेश की गयी जो सम्भवत: इन्हीं पक्षकारों के मध्य लम्बित रहे मामले में पारित किया गया प्रतीत होता है। दाण्डिक विविध याचिका संख्या 427/2001 गौरी शंकर एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 3.11.2009 तथा आपराधिक विविध याचिका संख्या 1523/2006 लल्लूराम एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.01.2011 की प्रति भी पेश की गयी है जिन सभी में उक्त विधि का ही प्रतिपादन करते हुए अधीनस्थ न्यायालय के प्रसंज्ञान लेने के आदेश एवं इस आदेश की पुष्टि करते हुए अपीलीय निगरानी न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को अपास्त कर याचिकाकर्ताओं के विरूद्ध विचाराधीन कार्यवाही को रद्ध किया गया है।

16. हस्तगत मामले में भी यही स्थिति स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष है कि तथाकथित घटना की तारीख दिनांक 15.03.86 है तथा प्रार्थी अभियुक्त एवं अन्य अभियुक्तगण के विरूद्ध आरोपित किये धारा 147,323 भारतीय दण्ड संहिता के अपराधों में संज्ञान के लिए विहित परिसीमा की अवधि को देखते हुए इन अपराधों हेतु प्रसंज्ञान लिये जाने की परिसीमा अवधि तीन वर्ष की है। अविवादित रूप से इस मामले में प्रसंज्ञान यह अवधि समाप्त होने के लगभग सवा तीन साल बाद दिनांक 19.06.92 को लिया गया है जो परिसीमा अवधि समाप्त हो जाने के कारण अवैध है। विद्वान विचारण न्यायालय ने विलम्ब की अवधि को क्षमा करने या परिसीमा अवधि को विस्तारित करने के सम्बन्ध में कोई आदेश

धारा 473 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत पारित नहीं किया है।

17. इस प्रकार विचारण न्यायालय-न्यायिक मजिस्ट्रेट संख्या-1, सीकर द्वारा प्रार्थी व अन्य अभियुक्तगण के विरूद्ध प्रसंज्ञान लेने का आदेश दिनांक 19.06.92 विधिसम्मत नहीं होने के कारण अपास्त किये जाने योग्य है। यह भी उल्लेखनीय है कि प्रार्थी अभियुक्त ने धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत जो याचिका इस माननीय न्यायालय में पेश की थी और जिसे इस न्यायालय द्वारा अपने आदेश दिनांक 27.04.2002 से निस्तारित करते हुए सैशन न्यायाधीश सीकर को अन्तरित करने का आदेश दिया था, उस याचिका में प्रार्थी द्वारा स्पष्ट रूप से परिसीमा अवधि के उपरान्त प्रसंज्ञान लिये जाने की आपत्ति ली गयी थी । निगरानी न्यायालय ने इस याचिका को इस न्यायालय के आदेशानुसार दाण्डिक पुनरीक्षण याचिका के रूप में दर्ज कर निस्तारित तो किया है किन्तु प्रार्थी की ओर से प्रसंज्ञान के सम्बन्ध में उठायी गयी उक्त विधिक आपत्ति का निस्तारण नहीं किया। इसके विपरीत प्रार्थी अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत निगरानी को अवश्य परिसीमा अवधि समाप्त होने के एकमात्र आधार पर अस्वीकृत कर दिया। निश्चित ही निगरानी न्यायालय अपर सैशन न्यायाधीश संख्या-1 सीकर का यह आदेश प्रार्थी अभियुक्त के प्रति पूर्णत: भेदभावपूर्ण है और प्रार्थी अभियुक्त के विरूद्ध परिसीमा अवधि समाप्त होने के उपरान्त लिये गये प्रसंज्ञान के बिन्दु को विधिरूपेण निर्णीत नहीं किये जाने कारण अपास्त किये जाने योग्य है।

18. उक्त प्रकार अभियुक्त प्रार्थी की ओर से प्रस्तुत यह याचिका केवल उक्त विधिक बिन्दु पर ही स्वीकार किये जाने योग्य है। मैं इस मत का हूं कि इस याचिका में विद्वान अधिवक्ता प्रार्थी द्वारा उठाये गये अन्य कई तर्क/आपत्तियां/बिन्दु भी तात्विक एवं सारभूत हैं जो विवेचन की अपेक्षा रखते हैं। इसके अतिरिक्त भी विद्वान अधिवक्ता प्रार्थी की ओर से विनिर्णय कानाराम बनाम राजस्थान राज्य 2003(1) क्रिमिनल लॉ रिपोर्टर (राज.) 39 तथा राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा ही आपराधिक विविध याचिका संख्या

1070/93 श्री नारायण एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य में पारित आदेश दिनांक 20.12.93, आपराधिक दाण्डिक विविध याचिका संख्या 451/92 कालूराम बनाम राजस्थान राज्य में पारित आदेश दिनांक 08.05.92 , आपराधिक विविध याचिका संख्या 23/94 कालूराम एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य में पारित आदेश दिनांक 15.04.94 प्रस्तुत किये गये हैं, जिनमें अत्यन्त लम्बी अवधि से आपराधिक कार्यवाही विचाराधीन होने के कारण ऐसी कार्यवाही को रद्ध एवं अपास्त किया गया है। इन विनिर्णयों में उल्लिखित स्थिति की भांति हस्तगत मामले में भी यही स्थिति विधमान है। दिनांक 15.3.86 की घटना के सम्बन्ध में दिनांक 4.12.86 को अन्तिम प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के उपरान्त भी बिना किसी यथोचित कारण इस अन्तिम प्रतिवेदन पर आदेश पारित करने हेतु इसे लगभग साढ़े पांच वर्ष तक लम्बित रखा गया । इस सम्पूर्ण अवधि में दिये गये ढ़ेर सारे स्थगनों का लेशमात्र भी औचित्य प्रतीत नहीं होता है। इसके उपरान्त परिवादी तथा अभियोजन को गवाहान की सूची पेश करने हेतु उदारतापूर्वक सैकड़ों अवसर प्रदान किये गये और अन्त में यह सूची दिनांक 22.03.2003 को प्रस्तुत हुई। इस प्रकार लगभग 25 वर्ष पूर्व की घटना के सम्बन्ध में विचाराधीन यह आपराधिक कार्यवाही रद्ध किये जाने का विद्वान् अधिवक्ता प्रार्थी का तर्क अस्वीकृत किये जाने योग्य नहीं है किन्तु हस्तगत मामले में ऊपर किये गये विवेचन के प्रकाश जब हम यह निर्धारित कर चुके हैं कि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा अपने आक्षेपित आदेश दिनांक 19.06.92 के द्वारा प्रार्थी अभियुक्त एवं अन्य अभियुक्तगण के विरूद्ध धारा 147,323 भारतीय दण्ड संहिता के अपराधों के अन्तर्गत लिया यह प्रसंज्ञान आदेश घारा 468 दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के अनुसार परिसीमा अवधि से बाधित होने के कारण अवैध है तो अन्य किसी बिन्दु पर विस्तार से विवेचन कर निष्कर्ष अभिलिखित किये जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

19. परिणामत: ऊपर किये गये विवेचन के प्रकाश में अभियुक्त प्रार्थी दीनदयाल शर्मा की ओर से प्रस्तुत यह आपराधिक विविध

याचिका 1090/2005 स्वीकार करते हुए विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट संख्या-1, सीकर के आदेश दिनांक 19.06.92 जिसके द्वारा प्रार्थी एवं अन्य अभियुक्तगण के विरूद्ध धारा 147,323 भारतीय दण्ड संहिता के अपराधों का प्रसंज्ञान लिया गया है, को तथा अपर सैशन न्यायाधीश संख्या-1 सीकर के आदेश दिनांक 27.07.2005 को अपास्त किया जाता है। फलस्वरूप प्रार्थी तथा अन्य सभी अभियुक्तगण के विरूद्ध एफ आई आर संख्या 54/86 थाना कोतवाली, सीकर के आधार पर विचारण न्यायालय में विचाराधीन प्रकरण संख्या-415/92 सरकार बनाम दीनदयाल एवं अन्य की कार्यवाही रद्ध की जाती है। इस आदेश के फलस्वरूप संलग्न स्थगन आवेदन संख्या 1314/2005 भी निरस्त किया जाता है।

20. विद्वान् विचारण न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि इस आदेश के अनुसरण में उनके यहां विचाराधीन इस आपराधिक प्रकरण की पत्रावली को आवश्यक पृष्ठांकन कर दाखिल दफ्तर करें। विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय का अभिलेख अविलम्ब वापस प्रेषित किया जाए।

21. यह दाण्डिक विविध याचिका उक्त प्रकार निस्तारित करते हुए संलग्न प्रार्थना संख्या-1314/2005 भी निरस्त किया जाता है।

(न्या0 एस एस कोठारी)

"all corrections made in the judgment/order have been incorporated in the judgment/order being e-mailed."

अनिलशर्मा/PS